वार्षिक सदस्यता शुल्क - रु. २५/-

स्वानुभूतिप्रकाश

प्रकाशक :
श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट
भावनगर - ३६४ ००१.

ज्ञानवैभवधारी सातिशय श्रुतज्ञानके धनी भावि तीर्थाधिनाथ की भेंट करानेवाले चैतन्यरत्न प्रशममूर्ति धन्यावतार पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन को उनके ११०वें मंगलकारी जन्मजयंती प्रसंग पर शत शत वंदन !!

ભગવતીમાતા પૂ. બહેનશ્રી ચંપાબેન

(पूज्य बहिनश्री) गणधरका जीव हैं, इसलिये भविष्यमें वे बारह अंगकी रचना करेंगे। बहिनश्रीकी नज़र बहुत सूक्ष्म थी जैसे कि वर्तमान समाजको वास्तवमें क्या देना जरूरी है, यह उनके ज्ञानमें बहुत आया है। उनके वचनामृत प्रसिद्ध हुए तब गुरुदेव फिदा हो गये ! आफरीन हो गये ! एक-एक बोलमें अकेला अध्यात्मका अमृत भरा है ऐसा कहना होगा। ...भावनाका विषय प्रस्थापित करके तो उन्होंने जैसे फैंसला ही कर दिया है। मुमुक्षुओंको तो जैसे एक रत्न ही हाथमें आ गया ऐसा कहना होगा।

-पूज्य भाईश्री शशीभाई

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५४९, अंक-३०८, वर्ष-२५, अगस्त-२०२३

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के शिष्यरत्न पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन सम्बन्धित प्रमोदपूर्ण हृदयोद्‌गार!

बहिन (चंपाबेन) तो बहुत ही गंभीर-गंभीर! ऐसा आत्मा इस समय हिन्दुस्तानमें नहीं है। पवित्रता-परिणति, और शुद्ध परिणति सहितका जातिस्मरणज्ञान है। वैराग्य-वैराग्य! शास्त्रमें आता है कि-जब तीर्थंकर दीक्षा लेते हैं तब पहले जातिस्मरण होता है ऐसा नियम है।....जातिस्मरण हो तब उपयोग लगाना नहीं पड़ता और फटसे ज्ञान हो जाता है, एकदम वैराग्य हो जाता है। ऐसा बहिनको हो जाता है। बहिनको जातिस्मरण होने पर वैराग्य बहुत बढ़ गया है; उन्हें बिलकुल परकी कुछ पड़ी नहीं है।

*

२८ वर्ष हो चुके हैं जातिस्मरण हुए, परन्तु बाहर आनेकी जरा-सी भी जिन्हें (बहिनश्री चंपाबेनको) वृत्ति नहीं उठती-प्रतिबिम्ब जैसी स्थिर हो गई हैं। जिन्हें स्वयंको सागरोपम वर्षोंका ज्ञान है फिर भी गुप्त! मुझसे भी नहीं कहा। मेरी सब बातें कह जायें, परन्तु अपनी नहीं।....इनका आत्मा कितना गंभीर! अलौकिक! अचिन्त्य! अद्‌भूत!-शब्द कम पड़ते हैं! यह तो सागर समान गंभीर हैं।

*

बहिनको (चंपाबेनको) तो चार भवका ज्ञान (जातिस्मरण) है। असंख्य अरबों वर्षका ज्ञान है इन्हें। यह तो कोई अलौकिक आत्मा है। चंपाबेनकी शक्ति तो गजब है। नरम नरम नरम हैं। स्त्री-शरीर है परन्तु कहीं स्त्री शरीर थोड़ा ही बाधक होता है? ३४ वर्ष हो गये हैं उन्हें ज्ञान प्रगट हुए। स्त्रियोंमें धर्मरतन हैं।

*

बहिन (बहिनश्री चंपाबेन) तो आराधनाकी देवी हैं। पवित्रतामें सारे भारतमें अजोड़ हैं। उनकी छत्रछाया सारे

सोनगढ़में है। ओहो ! बहिन तो भगवतीस्वरूप हैं। तुझे और कहाँ ढूँढ़ने जाना है? उनके दर्शन कर न! एक बार भावसे जो उनके दर्शन करेगा उसके अनन्त कर्मबंधन ढीले हो जाएँगे। उनके चरणोंसे जो लिपटा रहेगा उसे भले ही सम्यग्दर्शन न हो, तत्त्वका अभ्यास न हो, तो भी उसका बेड़ा पार है।

*

सुवर्णपुरीकी यह रचना (सीमंधरभगवान, कुन्दकुन्दाचार्यदेव इत्यादिकी प्रतिष्ठा) उनके विदेहके जातिस्मरणका चित्रण है।

*

चंपाबेन तो इस कालका आश्चर्य हैं।

*

आज बहिनका जन्मदिन है न !.... सबको कितना उल्लास दिखायी देता है; उन्हें कुछ है? अध्यात्ममें उनकी स्थिति उदास, उदास एवं स्थिर है।

*

बहिन (चंपाबेन) की निर्मलता बहुत-बहुत ! निर्मलता-निर्मलता ! अपूर्व-अपूर्व स्मरण ! शांत एवं गंभीर ! बहिन तो धर्मरतन हैं । महाविदेहमें बहुत निर्मलता थी; वहाँकी निर्मलता लेकर यहाँ आयी हैं। एकान्तप्रिय, शान्तिसे अकेली बैठकर पुरुषार्थ करती रहती हैं। उन्हें कहाँ किसीकी पड़ी ही है ! कुटुम्बकी भी नहीं पड़ी ! अन्तर स्वरूप-परिणतिमें रहती हैं।

*

ओहो! बहिनके ज्ञानकी निर्मळताकी क्या बात कहें! बहुत स्पष्ट ज्ञान!....बहिन तो जबरदस्त आराधना करती हैं। अकेली बैठी अपना काम करती ही रहती हैं।....अब तो उन्हें बाहर लाना ही है। उनका जयजयकार होगा, उनकी बड़ी शानदार उन्नति होगी, जो जियेंगे वे देखेंगे। अलौकिक द्रव्य है, उनकी लाईन ही ओर है।

*

बहिन बोलती तो बहुत कम हैं। लड़कियों-के बहुत भाग्य हैं। यदि मौन रहें तब भी उनके दर्शनसे तो लाभ ही

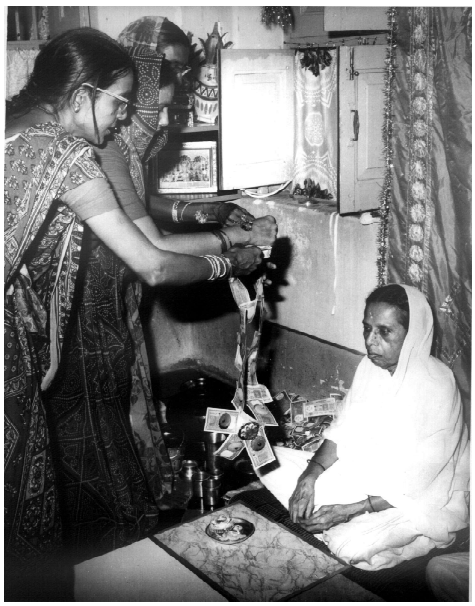

है।....हमें बहुत समयसे ख्याल था कि बहिन कि बहुत शक्ति है।

*

श्री कुन्दकुन्द-आचार्यदेव विदेहमें गये थे उसके कौन साक्षी हैं? साक्षी यह चंपाबेन बैठी हैं ये हैं।

*

बहिनकी गंभीरता तो देखो! बहिनके बोल (वचनामृत) बहुत गंभीर हैं। बहिनको तो कहां बाहर आना है? बहुत उत्तम हुआ कि बहिनकी यह पुस्तक बाहर आई। बहिनकी पुस्तक तो बहुत सरस! बहुत ही सरस! जिसे अध्यात्मकी रुचि हो उसके लिये तो बहुत ही अच्छी है। ऐसी पुस्तक कब बाहर आती! बहिनका तो विचार नहीं था और बाहर आ गई। जगतके भाग्य हैं!

*

बहिनका आत्मा तो मंगलमय है, धर्म-रतन है। हिन्दुस्तानमें बहिन जैसी अजोड़ स्त्रियोंमें कोई है नहीं, अजोड़ रत्न है। स्त्रियोंके तो महाभाग्य हैं जो ऐसा रत्न मिला है।

*

(बहिनश्रीको आते देखकर कहा-) बहिनके लिये जगह करो, 'धर्मकी शोभा' चली आ रही है। बहिन न तो स्त्री हैं, न पुरुष, वे तो स्वरूपमें हैं। भगवतीस्वरूप एक चंपाबेन ही हैं, उनकी दशा अलौकिक है। वे तो अतीन्द्रिय आनन्दमें मौज कर रही हैं।

*

यह तो बहिनके अन्तरके वचन हैं न! बहिनकी भाषा सादी, किन्तु अंतरकी है। अनुभव विद्वत्ता नहीं चाहता, अंतरकी अनुभूति एवं रुचि चाहता है। यह जो बहिनके शब्द हैं वे भगवानके शब्द हैं। भाषा भी नयी और भाव भी नये! सादी भाषामें अन्दर रहस्य है। लाखों पुस्तकें छप चुकी हैं, मैंने कभी कहा नहीं था; जब यह (वचनामृत) पुस्तक हाथ-में आयी (देखी-पढ़ी) तब रामजीभाईसे कहा- भाई! यह पुस्तक एक लाख छपाओ।

*

(बहिनश्रीके वचनामृत) पुस्तक समय पर बाहर आई। बहिनको कहाँ बाहर आना ही है, किन्तु पुस्तकने बाहर ला दिया। भाषा सरल है किन्तु भाव बहुत गंभीर हैं। मैंने पूरी पुस्तक पढ़ ली है। एक बार नहीं किन्तु पच्चीस बार पढ़ ले फिर भी सन्तोष न हो ऐसी पुस्तक है। यह दस हजार पुस्तकें छपवाकर सब हिन्दी-गुजराती 'आत्मधर्म' के ग्राहकोंको भेंट दी जाएँ ऐसा मुझे लगा।

*

परिणमनमेंसे निकले हुए शब्द हैं। बहिनको तो निवृत्ति बहुत। निवृत्तिमेंसे आये हुए शब्द हैं। पुस्तकमें तो समयसारका सार आ गया है-अनुभवका सार है; परम सत्य है। 'वचनामृत' वस्तु तो ऐसी बाहर आ गई है कि इसे हिन्दुस्तानमें सब जगह प्रगट करना चाहिये।

*

यह बहिनके वचन हैं वे अनंत ज्ञानियोंके वचन हैं। इन्द्रोंके समक्ष इस समय श्री सीमंधरदेव जो कह रहे हैं वही यह वाणी है। यह पुस्तक साधारण नहीं है, इसमें तो बहुत कुछ भरा है। भाषा मीठी है, सादी है; भाव गहरे और गंभीर हैं। दिव्यध्वनिका यह आवाज है। अरे! एक बार मध्यस्थरूपसे इसे पढ़े तो सही! भगवानकी कही हुई जो ॐकार ध्वनि है उसमेंसे निकला हुआ यह सार बहिनने कहा है।

*

इस कालका योग अनुकूल है; बहिन जैसोंका इस काल अवतार है। अरे! धर्मात्मा गृहस्थसे भेंट होना भी अनंत कालमें कठिन है। भाइयोंको इस काल धर्मात्मा पुरुष मिल जायें, परन्तु इस कालमें बहिनोंके भी सद्भाग्य हैं।

*

बहिनसे बोला गया अन्तरमेंसे। वहाँसे (विदेहक्षेत्रसे) आयी हुई बात है। बहिन वहाँसे आयी हैं।....बहिन (लड़कियोंके सामने) बोलीं और लिखा गया, नहीं तो बाहर आता ही कहाँसे? (यह सब) खोदना है पत्थरमें (संगमरमरके पटियोंमें)।

*

यह बहिनके वचन हैं। अंतर आनन्दके अनुभवमेंसे आयी हुई बात है। बहुत जोर है अंतरका, अप्रतिहत भावना। आत्माका सम्यग्दर्शन और अतीन्द्रिय आनन्दकी अनुभूति-उसमेंसे यह बात आयी है। आनन्दके स्वादमें मुरदेकी भाँति चलती हैं। अहाहा! सच्चिदानन्द प्रभु हैं बहिन! अंतरकी महत्ताके सामने बाहरका कुछ लक्ष ही नहीं है। अनुभवी, सम्यक्त्वी, आत्मज्ञानी हैं। आत्माका

अनुभव तो है परन्तु साथ ही असंख्य अरब वर्षोंका जातिस्मरणज्ञान है। परन्तु लोगोंको बैठना कठिन पड़े।

*

बहिन (चंपाबेन) तो जैनकी मीरांबाई हैं।....भान सहितकी भक्ति है, अंधी दौड़ नहीं है।

*

वचनामृतके एक-एक बोलमें, एक-एक शब्दमें निधान भरे हैं। जिसे तल पकड़ना आता हो उसे अगाधता लगे स्वभावकी। पर्यायने प्रभुका संग्रहण किया, पूरा ज्ञानमें ले लिया। यह तो सिद्धान्तका दोहन है। जगतके भाग्य कि यह (बहिनकी पुस्तक) समय पर बाहर आ गई। थोड़े शब्दोंमें, सादी भाषामें, मूल तत्त्वको प्रगट किया।

*

बहिन तो महाविदेहसे आयी हैं। उनके अनुभवकी यह (वचनामृत) वाणी है। हीरोंसे सन्मान किया तब भी उन्हें कुछ नहीं। बहिन तो (थोड़े भवमें) केवलज्ञानी होंगी।

*

बहिनको खबर नहीं कि कोई लिख लेगा। उन्हें बाह्य प्रसिद्धिका जरा भी भाव नहीं। धर्मरतन हैं, भगवती हैं, भगवतीस्वरूप माता हैं। (उनके यह वचन) आनन्दमेंसे निकले हैं। भाषा मीठी आ गयी है।

*

बहिन अभी तक गुप्त थीं। अब ढँका नहीं रहेगा-छिपा नहीं रहेगा। उनके वचन तो भगवानकी वाणी है, उनके घरका कुछ नहीं है-दिव्यध्वनि है। बहिन तो महाविदेहसे आयी हैं। यह वचनामृत लोग पढेंगे, मनन करेंगे, तब ख्याल आयगा कि यह पुस्तक कैसी है! अकेला मक्खन है।

*

(बहिनकी) यह वाणी तो आत्माके अनुभवमें-आनन्दमें रहते-रहते आ गयी है। हम भगवानके पास पूर्वभवमें थे। बहुत ऊँची बात है। इस समय यह बात और कहीं नहीं है। बहिन (चंपाबेन) तो संसारसे भर गयी हैं। अपूर्व बात है बापू!

*

बहिनकी पुस्तक तो ऐसी बाहर आ गई है कि मेरे हिसाबसे तो सबको भेंट देना चाहिये। बहुत सादी-बालक जैसी भाषा; संस्कृत भाषा नहीं। बहुत जोरदार गंभीर बातें उसमें हैं।

*

बहिनकी पुस्तकमें बहुत संक्षिप्त और माल-माल है। अन्यमतियोंको भी पसन्द आये ऐसा है।....अरे! उसमें तो तेरी महिमा और बड़ाईकी बातें हैं। मुनियोंकी कैसी बात ली है!-'मुनियोंको बाहर आना वह बोझ लगता है।' यह पुस्तक बाहर आई सो बहुत ही अच्छा हुआ। अंदर थोड़ेमें बहुत सी बातें हैं।

*

बहिन तो एक अद्भुत रतन पैदा हुई हैं। शक्ति अद्भुत है। अतीन्द्रिय आनन्दके वेदनमें उन्हें (बाहरकी) कुछ पड़ी ही नहीं। हिन्दुस्तानमें उनके जैसा कोई आत्मा नहीं है। यह पुस्तक बाहर आई इसलिये कुछ खबर पड़ती है।

*

चंपाबेन अर्थात् कौन?! उनका अनुभव, उनका ज्ञान, समता अलौकिक है।....स्त्रीकी देह आ गई है। परन्तु अंतरमें अतीन्द्रिय आनन्दकी मौजमें पड़ी हैं; उसमेंसे वाणी निकली है।-यह, उनकी वाणीका प्रमाणपना है।

*

बहिन अलौकिक वस्तु हैं; देहेसे भिन्न और रागसे भिन्न आत्माका अनुभव कर रही हैं। उन्हें (बाह्यमें) कहीं मजा नहीं आता, वे तो अतीन्द्रिय आनन्दमें मौज करती हैं।

बहिनके वचनामृत यह तो केवलज्ञानकी बारह-खड़ी है। दो-चार बार नहीं किन्तु दस बार पढ़े तब समझमें आये।

*

बहिनकी (चंपाबेनकी) तो क्या बात करूँ। उनकी निर्मल द्रष्टि और निर्विकल्प स्वात्मानुभूति इस कालमें अजोड हैं। वे तो अंतरसे ही उदास-उदास हैं। उनके सम्बन्धमें विशेष क्या कहूँ? मेरे मन तो वे भारतका धर्मरतन, जगदम्बा, चैतन्यरत्न, धर्ममूर्ति हैं, हिन्दुस्तानका चमकता सितारा हैं।

*

बहिनको असंख्य अरबों वर्षका ज्ञान है-९ भवका ज्ञान है (-४ भूतके, ४ भविष्यके) । बहिन तो भगवानके पाससे आयी हैं। अनुभवमेंसे यह बात आयी है। उदयभावसे तो मर गई हैं, आनन्दसे जी रही हैं। परमात्माके पाससे आयी हैं। साक्षात् परमात्मा तीन लोकके नाथ सीमंधरभगवान बिराजते हैं वहाँ हम साथ थे। क्या कहें प्रभु! सीमंधर परमात्माके पास कई बार जाते थे। उन भगवानकी यह वाणी है। बहिन तो आनन्दसागरमें....

('धन्य अवतार' में से साभार)

(पृष्ठ संख्या १३ से आगे..)

पूर्ण मुक्तदशाकी प्राप्ति भी मेरा ही स्वभाव है। ये कोई बाहरसे लानेकी चीज़ नहीं, यह तो मेरा स्वभाव ही है। मेरे स्वभावमें मैं रहुँ, यही मुक्ति है। मेरे स्वभावसे बाहर निकलना ही बंधन है। मुक्त और बंधनका इसके अलावा दूसरा कोई लंबा-चौड़ा हिसाब है नहीं। जितना स्वद्रव्यसे बाहर निकला इतना परद्रव्यके साथ, परवस्तुमें प्रतिबद्ध हुआ। जितना स्वभावमें समा गया उतना अप्रतिबद्ध हुआ, उतना मुक्तभाव है। आंशिक मुक्तभाव प्रगट हुआ वह पूर्ण मुक्तिका कारण है।

सहजरूपसे लिया है। यदि द्रव्य तेरे हाथ लग गया तो तुझे मुक्तिकी पर्याय प्राप्त करना यह कोई बड़ी डरनेवाली बात नहीं है। 'गुरुदेवश्री' को सुननेके पहले और बादकी स्थितिकी तुलना करते हुए 'सोगानीजी' एक पत्रमें लिखते हैं कि, मोक्षके बारेमें पहले तो यों लगता था कि, अरे! मेरे जैसे पामर मनुश्यको मोक्षकी प्राप्ति कैसे हो? यह तो कोई जंगलवासी, योगियोंका, ऋषिमुनियोंकी बसकी बात है। मोक्ष तो इतनी बड़ी उपलब्धि लगती थी कि, मानों अशक्य और असंभव न हो। बादमें 'गुरुदेवश्री'का उपकार गाते-गाते पूरी बात करते हैं कि, हे भगवान! आपको सुनते हुए, 'भगवान हूँ' 'भगवान हूँ' ऐसी आपकी वाणी सुनते हुए मोक्ष इतना सहज और आसान लगने लगा। पत्र सब हिन्दीमें हैं। बादमें पता चला, जब आपको सुना, आपकी वाणी सुनी, बादमें पता चला कि, मोक्ष तो इतना आसान है! मोक्ष इतना आसान है। सहज प्राप्त हो जाये ऐसी चीज़ है, सो तो आपको सुनने के पश्चात् पता चला। पता चला मतलब वास्तवमें पता चला था। सिर्फ जानकारी हुई इतना ही नहीं परन्तु स्वयं मोक्षदशाके समीप हैं ऐसे पूर्ण मुक्त स्वरुप आत्माके अनुभवको संप्राप्त किया। और अनुभव हुआ मतलब मोक्ष अब हो जायेगा ऐसी प्रतीति हो गई। खातरी हो गई। इसलिए लगा कि, अरे! मोक्ष इतना सरल है! यह भगवान आपकी वाणीका प्रताप है। मेरा काम नहीं है। यह तो आपकी वाणीका काम है। क्योंकि पहले भी मैं था और अभी भी मैं ही हूँ, परन्तु आपकी वाणी संप्राप्त होनेपर ऐसा हो गया। ऐसा कहकर विशेषरूपसे उपकार गाया है। (यहाँ तक रखते हैं।)

*

पूज्य भाईश्री शशीभाई के परम पूज्य भगवती माता के प्रति भक्तिपूर्ण हृदयोद्‌गार

गुरुकी भक्ति किस तरह प्रगट हो? जिन्हें भक्ति के भाव प्रगट नहीं होते हों उन्हें बहिनश्री की वाणी का लाभ लेना चाहिए। क्योंकि वे भक्ति करते-करते ज्ञानी हुए और ज्ञानी होने के पश्चात भी उन्होंने अवर्णनीय भक्ति की है। अत: जिन मुमुक्षुओं को अपनी दशामें भक्ति की क्षति है ऐसा लगता हो उन्हें ये वचनामृत उपकारभूत हैं।

*

पूज्य बहिनश्री ने आखरी दिनों में अपनी एक अंगत बात इसप्रकार व्यक्त की थी कि, अभी इस भव में इस पर्याय में चारित्रदशा की परिस्थिति नहीं है परन्तु अंतर साधना का प्रकार इतना उग्र था कि, इस स्थिति में रहते हुए भी अचारित्र भाव जो हैं उसके मूल काट रही हूँ।

*

'बहिनश्री के वचनामृत' की विशिष्टता है कि, अनेक जगह मुमुक्षुओं को ऐसा मार्गदर्शन दिया है कि, ऐसे परिणाम हो और तेरा कार्य संपन्न न हो यह संभव ही नहीं है। क्योंकि स्वयं ने अपने अनुभव से बात की है।

*

बहिनश्री स्वयं भक्तिप्रधान परिणमनवाले थे। ज्ञानी महात्मा तो थें, लब्धिधारी तो थें परन्तु भक्ति प्रधानता भी बहुत थी। ज्ञानप्रधानता में ज्यादा जाते नहीं थे। ज्ञान तो बहुत था परन्तु भक्तिप्रधानता बहुत थी। उनके वचनों में बात

- बात में ऐसी बातें आएगी।

*

गुरुदेवश्री के महाप्रयाण पश्चात पूज्य बहिनश्री एक बार इस प्रकार बोले थे कि, पर्याय का फर्क है वरना तो जंगल में चले जायें। उन्हें सत्संग का एक बड़ा आधार था - गुरुदेव। बहुत वैराग्य था, वैराग्य विशेष था। वैराग्य में ऐसी बात करते थें, कि क्या करें, पर्याय का फर्क है, वरना जंगलमें चले जाते, निकल ही पड़ें यहाँ से। यानी कि आत्मा का साधन कर ले। इसका अर्थ यह हुआ कि अंतर में लीन होकर आत्मा का अहोरात्र - दिन-रात आत्मसाधन करें और दूसरा कुछ नहीं करें, इतना जोर है इसके पीछे। इस कथन के पीछे जो जोर है, ऐसा जोर है और वही मुमुक्षुजीव के लिए उपदेश का विषय है कि कर्तव्यरूप तो यही प्रकार है।

*

पूज्य बहिनश्री चर्चा करते वक्त कभी-कभी कहते हैं कि, गुरुदेवश्री के प्रवचन सुनते वक्त अपूर्व-अपूर्व लगा करता। उन्होंने तो सालों तक प्रवचन सुने हैं, पैंतालिस साल सुने। अब बात तो वही की वही कईयों बार आती होगी, हर घण्टे में नई-नई बात ही आये ऐसा बनता है क्या? एक ही बात बहुत बार आने पर भी अपूर्व क्यों लगती होगी? कि, अपूर्व तत्त्व जो आत्मा, इसका भाव वहाँ पर दिखता है। उन वचनों में एसा भाव दिखता है। बस! फिर तो महिमा आये ही आये, महिमा करनी नहीं पड़ती।

*

पूज्य बहिनश्री के बारे में ऐसा सुना हुआ है कि उनका प्रवेश भी बहुत ज़ोर से हुआ था। उस भूमिका में भी बहुत शुरू-शुरू में भी नज़दीकी समयांतर पर कितनी बार निर्विकल्प दशा आ जाती थी। यह उनते पत्रों में आता है, अभिनंदन ग्रंथ में यह विषय आया है। यही सूचित करता है कि बहुत उग्रदशा थी, प्रवेश ही बहुत उग्र था। उसवक्त दूसरे आगम इतने पढ़े नहीं थे, छोटी उम्र थी, दूसरे आगम - 'दिगम्बर आगमों'का परिचय नहीं था। (उस वक्त कहते थे) 'अब तो यह उपयोग जो अंदर जाता है वह केवलज्ञान लेकर ही बाहर निकले ऐसा ही करना है।' यह पंचम काल है, स्त्री-देह है, सब भूल जाते थें। इतना ज़ोर से उपयोग अंदर जाता था, स्थिर होता था कि, अब तो केवलज्ञान लेंगे, ऐसा ज़ोर आता था।

*

पूज्य बहिनश्री का दृष्टांत बहुत समर्थ दृष्टांत है। हमारे लिए जीवंत दृष्टांत है। पंद्रह वर्ष की उम्र में सिर्फ सत्संग का ही विवेक उन्होंने किया है। उसवक्त आत्मज्ञान नहीं था, उतनी कोई गहरी धार्मिक समझ नहीं थी। छोटी उम्र में बस इतनी समझ आ गई, इतना विवेक प्रगट हो गया कि, मुझे सत्संग प्राप्त होगा तो मेरा कल्याण होगा, बिना सत्संग कल्याण नहीं होगा। फिर तो पूरा जीवन समर्पित करने तक का कदम उठा लिया। बहुत बड़ा कदम उठा लिया कि, पूरा जीवन समर्पित कर दिया। सत्संग मिलता हो तो पूरा जीवन बदलना है। यह घर नहीं चाहिए, यह कुटुम्ब नहीं चाहिए, ससुराल का कुटुम्ब छोड़ दिया। यह शहर नहीं चाहिए, यह प्रदेश नहीं चाहिए। जहाँ सत्संग नहीं है वहाँ किसी कीमत पर नहीं रहना है। कितना साहस किया है उस उम्र में! उस पर्याय में जो साहस किया है यह एक ऐसा दृष्टांत है कि, सत्संग की कीमत कितनी है, यह बात उन्हें समझ में आयी तो इसका फल उन्हें मिला है। यह उन्हें फलप्राप्ति हुई है। यह आत्मज्ञान है वह हकीकत में तो उसका फल है, जो सहजरूप से आता है।

*

'बहिनश्रीके वचनामृत' - २३८ पर पूज्य भाईश्री शशीभाईका प्रवचन (दि. ०५-१२-१९८७)

'यदि तुझे अपना परिभ्रमण मिटाना हो तो अपने द्रव्यको तीक्ष्ण बुद्धिसे पहिचान ले। यदि द्रव्य तेरे हाथमें आ गया तो तुझे मुक्तिकी पर्याय सहज ही प्राप्त हो जायगी।'

-बहिनश्रीके वचनामृत-२३८

२३८, इसमें मार्गदर्शन दिया है। **'यदि तुझे अपना परिभ्रमण मिटाना हो तो अपने द्रव्यको तीक्ष्ण बुद्धिसे पहिचान ले।'** देखो, कैसी बात निकली है। तुझे अगर पुण्यबंध करना हो तो ऐसी बात नहीं कही यहाँ पर। तुझे यदि स्वर्गके सुख भोगने हो तो ऐसी बात नहीं ली। तुझे यदि सांसारिक सहूलियतें और अनुकूलताओं की चाहत हो तो, सो बात भी यहाँ नहीं कहते। ऐसी कोई बात यहाँ नहीं कहते। सबसे बड़ा जो प्रश्न है वह जन्म-मरणका है, सीधी इसी बातको लेते हैं।

सारी दुनियामें सर्व मनुष्य इस बड़ी समस्याको छोड़कर छोटी-मोटी प्रतिकूलताएँ दूर करनेमें लगे हुए हैं। हालाँकि हरएकका उदय पूर्वकर्म अनुसार होता है, पूर्व निबंधित संचित कर्म अनुसार होता है। अब चाहे कितना भी प्रयत्न कर ले तो भी इच्छानुसार नहीं होता है। और इच्छाके अनुसार नहीं होने से जीवको समाधान नहीं होता है। आकुलता हुआ करती है। यही परिस्थिति है।

जबकि, ज्ञानी जन्म-मरण मिटानेके पुरुषार्थमें लगे हुए हैं। क्योंकि एक भवके दौरान जितना भी प्रतिकूलता या अनुकूलताका संयोग-वियोग बनता है, सो तो सब एक भवका हिस्सा है। यानी कि, आंशिक रकम है सब। मूल रकम तो पूरा भव है। अतः वह पूरा भव ही कैसे खत्म हो यह मूलभूत प्रश्न है, बड़ा प्रश्न है। और इसी बड़ी समस्याका हल करनेका यह विषय चल रहा है। छोटी-बड़ी प्रतिकूलताएँ दूर करनेमें, पापके उदयको हटाकर पुण्य उपार्जन करना पुण्य कमाना यह

सबमें सारी जिंदगी गँवाता है। सो बात तो यहाँ है ही नहीं। यहाँ उसका हलरूप उपाय नहीं लिया। वास्तवमें वह सही मार्ग है ही नहीं ऐसा कहते हैं। जिनमार्ग-जिनेश्वर परमेश्वरका मार्ग तो भव-भ्रमणको नष्ट करनेका है। पुण्य उपार्जनका या अनुकूलताएँ जुटाने या स्वर्गकी प्राप्तिका उपाय यह कोई जैनमार्ग नहीं है। वे सब तो अन्य मार्ग हैं। इसके लिये तो सारे अन्यमार्ग, अन्यमत, अन्यधर्म लिये हैं।

अतः यहाँ सर्व प्रथम यह बात ली कि, **'यदि तुझे अपना परिभ्रमण मिटाना हो तो...'** कई बार चर्चा चलती है तब चर्चाका विषय लेना पड़ता है कि, किसी भी मनुष्यके जीवनको देखे तो उसका अधिकांश समय आठ घण्टे - दस घण्टे तो इनके आर्थिक प्रयोजनके पीछे चले जाते हैं यानी कि, छोटी-

बड़ी हर प्रकारकी अनुकूलताएँ झुटानेके पीछे चले जाते हैं। फिर भी मिलता तो है पूर्वकर्म अनुसार। ठीक है? क्योंकि घरमें सब सुविधा हो किन्तु खुद बिमार हो तो उसका उपभोग कर सकेगा क्या? नहीं कर सकेगा। सेब आये हैं नहीं खायेंगे क्या? डॉक्टरने मना किया है। किसी भी चीज़के लिये वह उपलब्ध होने पर भी उसको नहीं मिली। जीवको पूर्वकर्म अनुसार ही जब-जब जितना उदयमें हो इतना ही संयोग होता है। इसके बिना नहीं होता। यह इसका नियम है। इसके बावजूद भी जीव आठ, दस, बारह घण्टे इसके लिये निकालना है। जबकि सबसे बड़ी समस्या जो है इसके लिये कितना समय निकालता है? इसके खातिर समय निकालनेका विचार भी कितना बलवान है यह सोचने लायक है। समय निकालना तो बादकी बात है। अब क्षुद्र कार्यके पीछे अधिक समय देना और महत्वपूर्ण कार्यके पीछे समय और शक्ति नहीं देना यह कितनी समझदारीकी बात है? इसमें कितना विवेक है? या अविवेक है? यह समझानेकी जरूरत नहीं है।

'गुरुदेवश्री' तो कहते हैं कि, प्रवचनोंमें विषय आता है कि, भाई! तुझे यह एक मौका मिला है। मौकाका मतलब है अल्प समय। जिसमें समय कम होता है उसे तक या मौका कहते हैं। तो यहाँ कहते हैं कि, यह तुझे एक तक मिली है। अब यह जो तक मिली है उसमें आत्महित हो जाये ऐसी संभावना है। वीतराग देव-गुरु-शास्त्र और ये मार्ग समझानेवाले तुझे मिले हैं, कहनेवाले मिले हैं, तेरा ध्यान खिँचनेवाले मिले हैं। अब बहुत मुश्किलसे मिला यह अल्प समय, बहुत मुश्किलसे क्यों कहा? क्योंकि अनंतकालमें यह मनुष्यपना बहुत भाग्यवशात् तुझे मिला है। मुश्किलसे मिला यह अल्प समय यदि तूने अन्य-अन्य कार्य करनेमें बरबाद किया या गवाँ दिया तो फिर तेरा जो कल्याण करनेका समय है वह चला जायेगा। बादमें तो घोर अंधेरा है। अन्य गतिमें चला गया फिर तो कुछ सूझनेवाला नहीं है। अतः प्रवचनके दौरान विषय चाहे जो भी चलता हो इस विषय पर दो-तीन बार ध्यान खींचते थे। प्रवचनके अंदर बार-बार यह विषय लानेका यही कारण है।

'यदि तुझे अपना परिभ्रमण मिटाना हो तो अपने द्रव्यको तीक्ष्ण बुद्धिसे पहिचान ले।' सामान्य बुद्धिसे पहिचानना यानी ग्रहण होना नहीं बनता। ज्ञानमें पकड़में आना - ग्रहण होना यह तीक्ष्ण बुद्धिका विषय है। कोई ऐसा कहे कि, हमारी ऐसी तीक्ष्ण बुद्धि न हो तो हमें क्या करना? सो बात गलत है। जहाँ तेरा प्रयाजन होता है वहाँ तेरी बुद्धि तीक्ष्ण हुए बिना नहीं रहती। संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव है तो तेरी बुद्धि तो तीक्ष्ण है ही। जहाँ-जहाँ तेरा प्रयोजन तुझे भासित होता है वहाँ-वहाँ तेरी बद्धि सूक्ष्मतासे काम करती ही है। तीक्ष्णरूपसे काम करती ही है। परन्तु यहाँ तुझे प्रयोजन भासित नहीं हुआ है। इसलिये तू बातको छोड़ देना-अरुचिवश छोड़ देना चाहता है इसलिये बहाना यों बनाता है कि हमारी ऐसी बुद्धि नहीं है। ऐसी तीक्ष्ण बुद्धि हमारे पास नहीं है। हम तो ठहरे स्थूलबुद्धिवाले। गलत बात है।

'**तो अपने द्रव्यको तीक्ष्ण बुद्धिसे पहिचान ले।**' तीक्ष्ण बुद्धिका अर्थ दो तरह से होता है। एक तो जो सूक्ष्मता होती है उसे तीक्ष्णपना कहनेमें आता है। जैसे नहीं कहते कि, यह तीक्ष्ण धारदार हथियार है। काटेदार होता है उसे भी तीक्ष्णता कहते हैं, दूसरा, उग्रता हो। जिसमें सूक्ष्मताके अलावा उग्रता भी हो। दोनों एक साथ हो। धारदार भी हो, तीक्ष्ण धारवाला। वह बात भी इसमें लेनी है। बुद्धि सूक्ष्म है और ज़ोरसे कार्य करनेका जिसका ढलन है, दो बात साथमें है। वह पुरुषार्थका प्रकार है। पुरुषार्थका भाव है और पहला है वह सूक्ष्मताका भाव है। दोनों इस कार्यमें साथ-साथ होते हैं। ऐसा एक शब्द इस्तेमाल किया है। ठीक यही शब्द - तीक्ष्ण बुद्धिका प्रयोग 'नियमसार' में हुआ है। 'नियमसार' गाथा ३८।

'स्वद्रव्यमें जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि है' ऐसे शब्द हैं उसमें। 'नियमसार'की ३८ गाथाकी 'पद्मप्रभमलधारीदेव'

की टीका है। **'स्वद्रव्यमें जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि है'** - ऐसे आत्माको 'आत्मा' वास्तवमें उपादेय है।' देखो! इसका अर्थ क्या हुआ? कि अपने स्वद्रव्यकी उपादेयतामें कौन आ सकता है? कि, जिसकी बुद्धि स्वद्रव्यमें तीक्ष्ण है वह। स्वद्रव्यमें तीक्ष्ण बुद्धि हो उसीको अपने स्वद्रव्यकी उपासना, आत्म-उपासना हो सकती है, दूसरेको आत्माकी उपासना नहीं हो सकती। ऐसे शब्दोंका प्रयोग उन्होंने यहाँ किया है। 'ऐसे आत्माको 'आत्मा' वास्तवमें उपादेय है।' और इसके अलावा जो भी है उसे आत्मा उपादेय नहीं है। क्योंकि यहाँ परिणाम रहित, चारों प्रकारके भावोंसे रहित सूक्ष्म स्वभावरूप परम पारिणामिक भाव जो वाकईमें आत्मा है उस आत्माको ग्रहण करना है कि - ऐसा मेरा स्वरूप है। जो तीक्ष्ण बुद्धिसे ग्रहण होता है। नहीं कहते हैं? कि जैसे ये आदमीकी हीरा पहिचाननेमें बहुत अच्छी नज़र है। भले ही दूसरे कोई पाँच सालमें माहिर हो गया हो तो इसकी नज़र जहाँ तक पहुँचे वहाँ तक पचास साल पुरानेवालेकी नज़र नहीं पहुँचती है। इसका मतलब क्या हुआ? कि उस विषयमें उसकी नज़र पैनी है। सारी जिंदगी डॉक्टरकी practice करनेवालेकी नज़र नहीं पहुँचे वहाँ तक पाँच-सात सालसे practice करनेवालेकी नज़र पहुँचती है। यानी उस विषयमें इसकी बुद्धि तीक्ष्ण है।

हरएक विषयमें जिस-जिस विषयमें जीव रस लेता है, उसका मतलब क्या हुआ? कि वह माहिर हो जाता है। उस विषयमें जीव माहिर हो जाता है। डॉक्टर फारुक आये थे न? पहले-पहल बुलाये थे। उसकी नज़र सूक्ष्म थी। डॉक्टरकी उम्र बहुत छोटी। उसवक्त तेईस सालकी थी जब पहले-पहल आये थे। पूछा कि तेईस सालकी छोटी उम्रमें आप तो बहुत आगे बढ़ गये हैं तो क्या कारण है? उन्होंने साफ बताया कि, जिस विषयमें हम रस लेते हैं उस विषयके हम expert हो जाते हैं। सीधीसी बात है। जो आदमी जिस विषयमें अधिक रस लेगा वह उसमें माहिर हो जाये यह एकदम स्वाभाविक बात है।

इस विषयमें, आत्मद्रव्यकी उपासना करनेमें यहाँ मुनिराज ऐसा कहते हैं कि, तीक्ष्ण बुद्धिवाले को वह उपादेय है। इसका मतलब क्या हुआ? कि, उसमें जीवने रस लिया। कब जाकर तीक्ष्ण बुद्धि हुई? कि उसमें रस लिया तब। या जैसे अपनी आत्माकी तीक्ष्ण बुद्धिसे उपासना नहीं होनेका क्या कारण है? कि उस विषयमें हमारा जीव रस नहीं लेता है। सीधीसी बात है। तो क्या रसविहिन है? कि बिलकुल नहीं। जीव रसविहिन नहीं है। हमारा रस आत्माके अलावा दूसरे विषयमें लगा हुआ है। जो अपनी रुचिका विषय होता है वहाँ जीवका रस लगा रहता है। रुचि व रसके परिणामोंको अविनाभावी संबंध है। एक हो वहाँ दूसरा होवे ही, अवश्य होवे ही होवे। उन्हें आपसमें अविनाभावी संबंध कहते हैं। अतः जहाँ जीवकी रुचि वहाँ जीवका रस है। उस विषयमें जीवको समझ आती है, पता चलता है, कुशलता आती है। सब होता है।

आत्मद्रव्यके विषयमें हमारा रस नहीं होनेसे हमारी बुद्धि वहाँ तीक्ष्ण नहीं हो पाती है। वह उपादेय नहीं लगता। तीक्ष्ण बुद्धिसे ग्रहण होनेपर इसकी उपदेयता होती है, उपासना होती है और अगर उपसना होती है तो जीवके जन्म - मरण - परिभ्रमण मिटनेकी परिस्थिति पैदा हो जाती है। वहाँ जन्म-मरण मिटनेकी कोई परिस्थिति नहीं है। जन्म-मरणसे रहित ऐसा जो स्वआत्मद्रव्य - उसकी उपासनासे जन्म-मरणका नाश होता है। अन्यथा जन्म-मरण मिटनेका तीन काल तीन लोकमें कोई उपाय नहीं है।

प्रश्न:- परिभ्रमण तो मिटाना है किन्तु शुभ-अशुभके रसमें बह जाते हैं, तो क्या करना?

समाधान:- रसमें बह जानेके पीछे सुखबुद्धिका कारण है। शुभमें, अशुभमें दोनों जगह जहाँ भी जीवका रस तीव्र होता है वहाँ जीवकी सुखबुद्धि है। वास्तवमें वहाँ सुख है कि नहीं? इसकी जाँच की नहीं। वास्तविक सुख है कि नहीं? इसकी जाँच नहीं की, और इस जाँचके अभावमें सही ज्ञानके अभावमें, सही

समझके अभावमें अनादिसे जो सुखबुद्धि उसमें पड़ी है उसीमें बहता चला जाता है। मनुष्यकाल तो सागरमें बिंदु, सिंधुमें बिंदु समान है। काल अनन्त है। अनादि-अनन्त कालमें जीवका कभी नाश नहीं हुआ। मनुष्यत्व तो बहुत अल्पकालीन है। इस बीच उलझ-उलझकर संयोगमें रत रहे और आत्माकी तीक्ष्ण बुद्धिसे अपने स्वद्रव्यकी उपासना नहीं की तो जन्म-मरण नहीं मिटेंगे।

प्रश्नः- कहाँ जायेगा?

समाधानः- जायेगा फिरसे, अधिकतर तो निगोदमें ही रहता है। दो हज़ार सागर भी समुद्रमें बिंदु समान है। दो हज़ार सागर या इससे कम वह भी अनन्तकालके आगे कुछ नहीं। क्योंकि दो हज़ार सागरकी गिनतीका काल-संख्यात काल हुआ। जबकि निगोदका तो अनन्त काल है। निगोदका काल तो अनन्त है।

प्रश्नः- स्थितिका परिपाक होनेपर...

पूज्य भाईश्रीः- स्थितिका परिपाक होना यह किसके हाथमें है? कोई दूसरा ईश्वर कर देता है क्या? किसी परमेश्वरके हाथमें है क्या? यानी दूसरेके हाथकी बात है या अपने हाथकी बात है?

भगवान तो ऐसा कहते हैं कि, यदि तुझे जन्म-मरण अर्थात् परिभ्रमण मिटानेकी भावना - तीव्र भावना हुई, क्योंकि जीवको कल्याण करनेकी सामान्य भावना तो कईबार हुई है परन्तु अगर तेरी (भावना) तीव्र हुई तो वही तेरी स्थितिका परिपाक है। और कोई बात नहीं है। स्थिति परिपाक कोई दूसरी बात नहीं। और अगर तुझे भावना नहीं हो रही है तो समझ ले तेरी स्थितिका परिपाक नहीं हुआ है - ऐसा ज्ञान कर। ऐसा ज्ञान करके इसके फलका विचार कर। इसके फलका अगर तुझे भय लगता हो.. क्योंकि छोटी प्रतिकूलताओंका तुझे भय लगता है और इसके लिए तू सारा दिन परेशान होता है, तो ये जो भविष्यकी अनंत प्रतिकूलताएँ आयेगी उसका यदि तुझे भय नहीं लगता हो तो तुझे बड़ा शूरवीर कहना पड़े! बड़ा बहादुर कहना पड़े कि जिसके कारण इतना बड़ा भय तुझे नहीं लगता। संसारका शूरवीर है तू! अब इसका तो कोई इलाज नहीं है। किन्तु अगर तुझे ऐसा लगे कि ऐसी स्थिति मुझे मंजूर नहीं हो तो तुझे अपनी स्थितिका सुधार करनेकी तीव्र (भावना) उत्पन्न हो, वही तेरा परिपाक है। उसे भवितव्यताका परिपाक, आसन्नभव्य हुआ ऐसा कहते है। इसके अलावा वह कोई दूसरी चीज़ नहीं है।

पात्रतासे वस्तुकी प्राप्ति है, धर्मकी प्राप्ति है। पात्रता यह कोई और चीज़ नहीं है परन्तु खुदको अपना कल्याण करनेकी तीव्र भावनाकी उत्पत्ति-यही एकमात्र पात्रता है। वह पात्रताका चिन्ह है। भावना बहुत बड़ी बात है। वह विषय तो अपने यहाँ चलता है। बहुत चलता है। भावना स्वयं ही पात्रताका ठोस - बहुत ठोस भूमिकाका लक्षण है। भावनामें आया सो पात्र हुआ। वह अवश्य छूट जायेगा। उसके जन्म-मरण अवश्य मिटेंगे। उसका परिभ्रमण टलेगा ही टलेगा।

कहते हैं कि, **'यदि तुझे अपना परिभ्रमण मिटाना हो तो अपने द्रव्यको तीक्ष्ण बुद्धिसे पहिचान ले।'** सबसे पहला काम पहिचान करनेका है - निर्णय करनेका है। सामान्य स्वभाव, ज्ञायक स्वभाव ज्ञ..ज्ञ..ज्ञ..ज्ञ.. ज्ञरूपसे जो सदा ही प्रकाश्यमान है। ज्ञायकत्वसे जो सदा प्रकाशमान है, कभी भी उसके प्रकाशका अभाव नहीं होता। इसे तू अन्यसे अलग करके भेदज्ञान करके पहिचान ले।

'यदि द्रव्य तेरे हाथ आ गया...' पहिचानपूर्वक स्वभाव स्वरूप द्रव्य, मूल स्वरूप, द्रव्य माने आत्माका मूल स्वरूप लेना, मूल स्वभाव लेना, वह यदि तेरे हाथ लग गया यानी कि, ज्ञानमें इसकी पहिचान हो गई कि, 'मैं ऐसा हूँ' **'तो तुझे मुक्त की पर्याय सहज ही प्राप्त हो जायगी।'** सहज, सहज आरामसे, लीलामात्रमें, क्योंकि ऐसा होनेका तेरा स्वभाव है। मुक्तदशा प्रकट होना भी तेरा स्वभाव है। जब तू अपने स्वद्रव्यको पहिचान लेगा तब ऐसी भी पहिचान हो जायेगी कि, सम्यक्दर्शन होना यह भी मेरा स्वभाव है, वीतरागताकी उत्पत्ति होना भी मेरा स्वभाव है,

(अनुसंधान पृष्ठ संख्या ०७ पर..)

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री द्वारा लिखित भक्तिमय पत्र (बहिनश्री की साधना और वाणी)

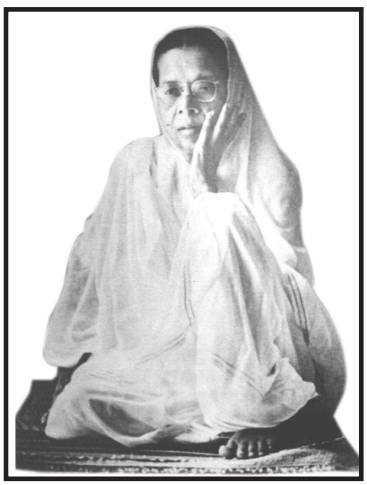

.....!

पंचाध्यायी के विषय में क्या करना, वह विचार चल रहा है। अनुभवप्रकाश के पूरे पुस्तक में 'अनुभव ही' होनेयोग्य है। 'अनुभव' पढ़ते, सुनते, प्रशस्त उल्लास आ जानेयोग्य है एवं आत्मपरिणति को लाभ होनेयोग्य है। वह श्री गुरुदेव का परम प्रताप है। गुरुदेव की वाणी अद्भुत, सूक्ष्म और गहन रहस्यों से भरी है। गुरुदेव इस भरतखण्ड में अद्वितीय रत्न प्रकटे हैं - जिनके दिव्य चैतन्य द्वारा और जिनकी दिव्य वाणी द्वारा, इस भरतक्षेत्र में बहुत-बहुत जीवों का उद्धार हुआ है। जिन्होंने अपने तीव्र पुरुषार्थ द्वारा अपूर्व तत्त्व को स्वयं प्रकट करके, हिन्दुस्तान के निद्राधीन जीवों को जागृत किया है, हिन्दुस्तान में, छुपे हुए आत्मतत्त्व को स्वयं प्रकट करके, अगणित जीवों का उद्धार किया है। ऐसे अपने गुरुदेव के चरणकमल में बारम्बार परम भक्ति से नमस्कार, नमस्कार ।

आंगन में विराजते ऐसे अपने गुरुदेव की निकटतारूप से, मन-वचन-काया द्वारा चरणसेवा निरन्तर हो, निरन्तर हो। चैतन्यस्वरूप की वृद्धि करानेवाले, जीवन की सफलता करानेवाले, परम उपकारी, प्रिय गुरुदेव की बिल्कुल समीपता हो, अब तो विरह सहन नहीं होता। महाभाग्य से ऐसे गुणसमूह, ज्ञानमूर्ति, शान्तिदाता गुरुदेव मिले हैं। धन्य है, इस क्षेत्र को, धन्य है, इस देश को।

लि.

देव-गुरु-शास्त्र की सेवा इच्छुक

*

आभार

'स्वानुभूतिप्रकाश' (अगस्त-२०२३, हिन्दी एवं गुजराती) के इस अंक की समर्पण राशि श्रीमती कृपालीबेन पियुषभाई भायाणी, कोलकात्ता की ओर से ट्रस्ट को साभार प्राप्त हुई है।
अतएव यह पाठकों को आत्मकल्याण हेतु भेजा जा रहा है।

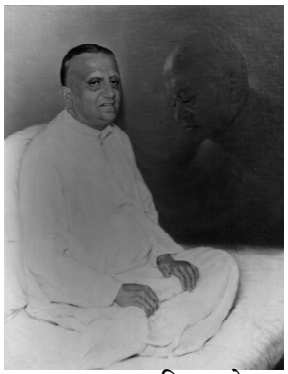

'द्रव्यदृष्टि प्रकाश'में से 'आत्माकी रुचि' सम्बन्धित पूज्य श्री निहालचंद्रजी सोगानीजी के चयन किये गये वचनामृत

(आत्मा के लिए:) रुचि की आवश्यकता चाहिए। दरकार होनी चाहिए। (विकल्पों से) थकावट होनी चाहिए। तीव्र प्यास (तालवेली) लगे तो ढूँढ़े ही। (८५)

*

प्रश्न :- रुचि बढ़ते-बढ़ते वस्तु की महत्ता बढ़ती जाती है और सुगमता भी ज्यादा भासती है ?

उत्तर :- रुचि बढ़ती है, ऐसे (पर्याय के) लक्ष्य में भी पर्याय की महत्ता होती है, उसमें (पर्याय में) 'मैं-पना' (अहम्पना) दिखता है तो त्रिकाली में नहीं जम सकते। - यह तो विकल्पवाली रुचि है। 'मैं तो परिणाम मात्र से भिन्न हूँ' - ऐसे त्रिकाली का अनुभव होना, वो ही अभेद की रुचि है। (८७)

*

प्रश्न : रुचि क्यों नहीं होती ?

उत्तर : जरूरत दिखे तो अंदर में आए बिना रहे ही नहीं। सुनते हैं (उसमें) प्रसन्नता आदि होती है, लेकिन सुख की जरूरत हो तो अंदर आवे। जरूरत न हो तो वहाँ (प्रसन्नता आदि में) ही ठीक माने; लाभ है, नुकसान तो नहीं न ! (- ऐसा भाव रह जाता है।) (११७)

*

यथार्थ रुचि हो तो काल लगे ही नहीं, रात-दिन, खाते-पीते-सोते उसके ही पीछे पड़े। (२३९)

*

जितनी धगश उग्र... उतनी जल्दी कार्य होता है। (३११)

*

(स्वरूप की) ऐसी रुचि होनी चाहिए कि उसके बिना एक क्षण भी चैन न पड़े। (३३१)

*

असल में तीव्र रुचि हो तो त्रिकालीदल में ही जम जाये; इधर-उधर की जँचे ही नहीं, (व्यवहार के विकल्प में रुके ही नहीं,) योग्यतापर छोड़ देवे, वह जोर (पुरुषार्थ) रहे ही नहीं; दृष्टि के विषय में ही जोर रहे। (इधर-उधर का विकल्प रहा करता है, वह स्वरूप की अरुचि के परिणाम का द्योतक है। स्वरूप की तीव्र रुचि में अन्य विकल्प नहीं रुचते।) (४१०)

*

(चर्चा सुननेवालों के प्रति :) सभी की लगनी तो अच्छी है; लेकिन यथार्थ लगनी लगे तो हर समय यही (स्वरूपघूँटण) चलता रहे (- इसमें) कितना समय चला जाये मालूम ही न पड़े। रुचि का स्वरूप ही ऐसा है कि - जहाँ लगे वहाँ काल (समय) दिखे ही नहीं। (४१८)

*

पूज्य बहिनश्री की तत्त्वचर्चा

(पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन को स्वानुभूति हुई उसके पूर्व की दशा)

प्रश्न :- नवमी ग्रैवेयक जानेवाले द्रव्यलिंगी मुनिने और ग्यारह अंगके पाठीने जिस तत्त्वको नहीं पकड़ा उसे आपने बाल्यावस्थामें अति सुलभतासे प्राप्त कर लिया और स्वानुभवसे जैनदर्शनकी यथार्थताका निश्चय करके अमूल्य चैतन्य चिन्तामणिको साध लिया। इस क्षेत्रमें वर्तमानकालमें जो अनेकानेक जीवराशि है उसमें आपने पूज्य गुरुदेवके प्रतापसे इस अतिगूढ रहस्यको खोला है। ऐसे एक महापुरुष आप हमारे बीच बिराजमान हैं। आपने किस विधिसे - किस विद्यासे यह रहस्य खोला है? और यह चिन्तामणि हाथ आने पर आपकी हृदयोर्मियाँ कैसी थी?

समाधान :- ग्यारह अंग पढ़े, परन्तु अंतरमें क्या है उसे जाननेका प्रयत्न नहीं किया। जीव अनंतबार नववें ग्रैवेयक गया, ग्यारह अंक पढ़ा वैसा तो अनंतबार किया है; परन्तु चैतन्यतत्त्वके स्वभावको पहिचाननेका प्रयत्न नहीं किया।

यह तो गुरुदेवका प्रताप है। गुरुदेवने यह मार्ग प्रकाशित किया कि - तत्त्व कुछ निराला ही है। भीतर जो स्वानुभूति होती है उसमें मुक्तिका मार्ग प्रकट होता है। गुरुदेवने मार्ग प्रकाशित किया और सब श्रवण करने पर अंतरमें ऐसे हो गया कि बस, यही करनेयोग्य है। इस मनुष्यभवमें इस एक मुख्य तत्त्वकी स्वानुभूति प्राप्त नहीं हुई तो यह सब मिला और मनुष्यभव मिला वह सब निरर्थक है। इस प्रकार अंतरसे भावना हुई कि यही करने योग्य है, अन्य कुछ करने जैसा नहीं है; अंतरमें एक स्वानुभूति प्रगट करनेयोग्य है।

'यही करनेयोग्य है' ऐसे इसीका निरंतर विचार, इसीका मंथन कर-करके अंतरसे निश्चय किया था कि इन गुरुदेवने बतलाया वह मार्ग ही सच्चा है। अनेक प्रकारके मार्गों में अनेक प्रकारकी बातें सब कर रहे हैं वे सब मिथ्या है; एक गुरुदेव दर्शाते हैं वही मार्ग सच्चा है। कोई कहे कि मार्ग तो अनेक प्रकारके हैं, उनमें यही एक मार्ग कैसे सच्चा है? यह तो स्वयं अंतरसे पुरुषार्थ द्वारा निश्चय कर सकता है कि यह सच्चा है।

व्यक्तिगत तो क्या कहना? उसका पुरुषार्थ, उसीका मंथन, बारंबार उसीकी लगन लगे कि 'एक ही - यही - प्राप्त करने जैसा है।' बारंबार वैसा चिन्तवन-मनन दिन-रात चलता, उसके बिना चैन नहीं पड़ता, उसके बगैर शांति नहीं होती; कितने ही घंटो तक बस उसीका ध्यान, उसीका मनन - सब वही का वही चलता था। उसमें गुरुदेवके प्रतापसे (सम्यकत्व) प्रगट हो गया। गुरुदेवका ऐसा कोई प्रताप और उपादान-निमित्तका वैसा मेल हो गया। उसमें कोई उग्र या अन्य कुछ लागू नहीं होता। अंतरमेंसे भेदज्ञानकी धारा और पुरुषार्थ इस प्रकार प्रगट हुआ।

रात्रिको सोते, जागते, स्वप्नमें भी बस, एक ही बात, उसीकी लगन थी, अन्य कोई लगन न थी। थोड़ा समय जाये तो ऐसा लगे कि अब भी क्यों नहीं होता? अभी भी क्या परिभ्रमणका दु:ख नहीं लगा? क्या यह नही करना है? इस प्रकार अंतरमेंसे एकदम आत्माकी पुकार आती कि अभी भी क्यों उत्कंठा नहीं होती? क्या अब भी परिभ्रमणकी रुचि है? अब भी जन्म-मरणकी रुचि है? विभावकी रुचि है? क्यों, कहीं अटक रहा है? - ऐसे

अंतरमेंसे - अपने आत्मामेंसे - ही आता था और उसके कारण पुरुषार्थ एकदम तीव्र हो जाता था। गुरुदेवका प्रताप और उपादान (दोनों) इकट्ठे हो गये।

गृहकार्य हो या यह हो, वह हो परन्तु लगन एक ही प्रकारकी रहती थी कि आत्मा जुदा है; कोई भी कार्य करते ऐसा लगता कि यह शरीर और भीतर यह जो विकल्प उठते हैं उनमें आत्मा कहाँ है? इन सबसें तो आत्मा जुदा है। इन सबमें आत्मा जुदा किस प्रकार है? उसीके विचार आते रहते। खाते-पीते भी ऐसा लगता कि आत्मा जुदा है। प्रतिक्षण वही विचार चला करते, वही के वही विचार आते थे। कपड़े हाथमें हों और विचार आते, प्रत्येक कार्यमें विचार आते कि यह भिन्न, यह सब जुदे और चैतन्य जुदा। प्रतिक्षण उसीकी रटन रहा करती थी। उसके जोरमें तीन-तीन घंटे ज्यों कि त्यों ध्यानमें बैठी रहती थी। क्यों अभी भी प्राप्त नहीं होता? इस प्रकार उसीके ही विचारोंमें, उसीकी ही एकाग्रतामें तथा उसीके ही ध्यानमें रहती। यह प्राप्त हुए बिना अंतरमेंसे सुख और शांति होनेकी नहीं है, ऐसे रहा करता था। (स्वानुभूतिदर्शन - १५६)

*

प्रश्न :- कोई पूर्वभवका कारण होगा?

समाधान :- पूर्वभवका कारण और वर्तमान अपनी योग्यता। पूर्वभवमें सुना हो वह भी कारण होता है और वर्तमान अपना पुरुषार्थ भी कारण होता है। गुरुदेवसे मार्ग सुना और वर्तमान अपना पुरुषार्थ हुआ उसके साथ पूर्वकी योग्यता-संस्कार भी कारण होता है।

जब जीव तैयारी करता है तब वह नया ही होता है। पूर्वभवमें तैयारी हुई हो तो उस समय नया था। इसलिये पूर्वके संस्कारको मुख्य नहीं करना। (स्वानुभूतिदर्शन - १५७)

*

प्रश्न :- 'यही करने जैसा है' ऐसा आपको लगा, वैसा हमें भी लगे उसके लिए अपनी पूर्वभूमिका की थोडी बात करनेकी कृपा करें।

समाधान :- 'यही करने जैसा है' ऐसी भावना पीछे प्रयत्न न चले तब तक शांति नहीं होती। ऐसा विचार आते कि 'यही करने जैसा है' ऐसा निश्चय किया तो भी पुरुषार्थ क्यों नहीं होता? क्या मेरे निर्णयमें कमी है? है क्या? ऐसे विचार आये। 'यही करना जैसा है' ऐसे भावना थी न! इसलिए वैसे ही विचार आया करते थे। अब भी क्यों पुरुषार्थ नहीं उभरता? क्या अभी भी रुचि कहीं और है? अब भी क्यों आकुलता नहीं होती? ऐसे विचार पुरुषार्थकी तीव्रता हेतु आते ही रहते थे।

गुरुदेव कहते थे कि स्वानुभूतिमें उस पार आत्मा बिराजता है। निर्विकल्प दशा सबसे निराली है। यद्यपि बीचमें क्या मार्ग आता है उसकी अधिक स्पष्टता तो कुछ थी नहीं, तथापि गुरुदेव निर्विकल्पदशाको स्वानुभूति कहते हैं और वह मुक्तिका मार्ग है; तथा आत्मा जुदा है ऐसा कहते हैं। - कुछ इसप्रकारका पकड़में आया था।

सब (करांचीको) छोडा, अब क्या करनेका है? जबतक अंतरमेंसे शांति प्राप्त न हो, तबतक चैन नहीं पड़नेका। अंतरमें जो विकल्पंकी माला (पंक्ति) है वह भी आकुलता है, उससे छूटना ही सच्चा मार्ग है। यह जो विभावोंका चक्र (क्रम) एकके बाद एक चलता है, उससे आत्मा जुदा है; वह अंतरमेंसे प्राप्त होता है। इन सबसे (अन्यमतोंसे) भिन्न सत्य मार्ग है। ऐसे विचार आते थे। सम्यग्दर्शन होनेके बाद ऐसा निश्चय हो गया कि यही मार्ग है; गुरुदेवने कहा वह यही है। (स्वानुभूतिदर्शन - १५८)

*

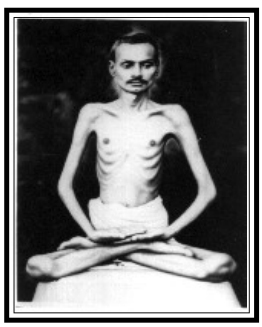

परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी द्वारा लिखित आध्यात्मिक पत्र

पत्रांक ३५३

ॐ

बंबई, चैत्र सुदी १२, शुक्र, १९४८

आप सबका मुमुक्षुतापूर्वक लिखा हुआ पत्र मिला है।

समय मात्रके लिये भी अप्रमतधाराका विस्मरण न करनेवाला ऐसा आत्माकार मन वर्तमान समयमें उदयानुसार प्रवृत्ति करता है; और जिस किसी भी प्रकारसे प्रवृत्ति की जाती है, उसका कारण पूर्वमें निबंधन किया हुआ उदय ही है। इस उदयमें प्रीति भी नहीं है, और अप्रीति भी नहीं है। समता है, करने योग्य भी यही है। पत्र ध्यानमें है।

*

पत्रांक ३५४

बंबई, चैत्र सुदी १३, रवि, १९४८

समकितकी स्पर्शना कब हुई समझी जाये? उस समय कैसी दशा रहती है? इस विषयका अनुभव करके लिखियेगा।

संसारी उपाधिका जैसे होता हो वैसे होने देना, कर्तव्य यही है, अभिप्राय यही रहा करता है। धीरजसे उदयका वेदन करना योग्य है।

*

पत्रांक ३५५

बंबई, चैत्र वदी १, बुध, १९४८

सम्यक्त्वकी स्पर्शनाके संबंधमें विशेषरूपसे लिखा जा सके तो लिखियेगा।

लिखा हुआ उत्तर सत्य है।

प्रतिबंधता दु:खदायक है, यही विज्ञापन।

स्वरूपस्थ यथायोग्य।

*

पत्रांक ३५६

बंबई, चैत्र वदी १, बुध, १९४८

आत्मसमाधिपूर्वक योग-उपाधि रहा करती है, जिस प्रतिबंधके कारण अभी तो कुछ इच्छित काम नहीं किया जा सकता।

ऐसे ही हेतुके कारण श्री ऋषभ आदि ज्ञानियोंने शरीर आदिकी प्रवर्तनाके भानका भी त्याग किया था।

समस्थितभाव।

*

‘पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन’की ११०वीं जन्म जयंतिके उपलक्ष्यमें
‘वचनामृत रहस्य’ पुस्तक जिज्ञासुओंको ट्रस्ट द्वारा भेंट दी जायेगी।

पुस्तक परिचय

‘पूज्य गुरुदेवश्री’ द्वारा ‘बहिनश्रीके वचनामृत’ पर नैरोबीमें हुए
भाववाही प्रवचनोंका शब्दशः प्रकाशन

संपर्क
श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट
नीरव वोरा मो: ●९८२५०५२९१३

REGISTERED NO. : BVHO - 253 / 2021-2023
RENEWED UPTO : 31/12/2023
R.N.I. NO. : 69847/98
Published : 10th of Every month at BHAV.
Posted at 10th of Every month at BHAV. RMS
Total Page : 20

‘सत्पुरुषों का योगबल जगत का कल्याण करे’

श्री शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर
भावनगर

स्वत्वाधिकारी श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट की ओर से मुद्रक तथा प्रकाशक श्री राजेन्द्र जैन द्वारा अजय ऑफसेट, १२-सी, बंसीधर मिल कम्पाउन्ड, बारडोलपुरा, अहमदाबाद-३८० ००४ से मुद्रित एवम् ५८० जूनी माणिकवाडी, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी मार्ग, भावनगर-३६४ ००१ से प्रकाशित
सम्पादक : श्री राजेन्द्र जैन -09825155066

Printed Edition :
Visit us at : http://www.satshrut.org

If undelivered please return to ...
Shri Shashiprabhu Sadhana Smruti Mandir
1942/B, Shashiprabhu Marg, Rupani,
Bhavnagar - 364 001

mayur process 9374825041